काव्य सुषमा

सम्पादक :

काशीनाथ

VEC, Library
009239

9239
VEC, Library
009239

काव्य-सुषमा

(श्रेष्ठ हिन्दी कविताओं का संकलन)

सम्पादक :

काशीनाथ

रीडर, हिन्दी विभाग

श्रीमती वी.हेच.डी.सी.आई. होम साइन्स कालेज

बेंगलूर-1

Vidya mandir
[HINDI BOOK CENTRE]
588, Avenue Road
BANGALORE-560002
Phone : 262553

वितरक :

अनिल पुस्तक केन्द्र

हिन्दी बुक सेंटर

अवेन्यू रोड़, बेंगलूर-2

मूल्य : रु० 8-85

रोमा पब्लिकेशन, अवेन्यू रोड़, बेंगलूर द्वारा प्रकाशित / स्वात्वाधिकार :
प्रकाशक / रेवती मुद्रण, मागडी रोड़, बेंगलूर-23 में मुद्रित

KAVYA SUSHMA (An Anthology of Hindi Poetry)

भूमिका

प्रस्तुत संकलन विश्वविद्यालयों में प्रवेश करनेवाले विद्यार्थियों को हिन्दी साहित्य का आरंभिक परिचय करने के लिए तैयार किया गया है। यह ध्यान रखा गया है कि हिन्दी-काव्यधारा का विकास क्रम छात्रों को अधिकाधिक स्पष्ट हो सके और साथ ही प्राचीन एवं आधुनिक रचनाओं का सम्यक प्रतिनिधित्व भी हो। छात्रों के सीमित भाषा-ज्ञान और ग्रहण शक्ति के अनुकूल ही कविताओं का संकलन हुआ है। यह प्रयास किया गया है कि संकलित कविताओं से रचनाकारों की विभिन्न प्रवृत्तियों का सहज अनुशीलन होवे।

संकलन में आई हुई रचनाओं के लिए हम संबद्ध कवियों के आभारी हैं और इस संकलन द्वारा हिन्दी का जो प्रशंसनीय प्रसार एवं प्रचार होगा उसका संपूर्ण श्रेय उन्हीं को मिलता है।

आशा है कि यह संकलन विद्यार्थियों की साहित्यिक संपत्ति को बढ़ाने के साथ-साथ हिन्दी साहित्य के पठन-पाठन की अभिरुचि को भी बढ़ाएगा।

—सम्पादक

VIJAYA EVENING COLLEGE.
BANGALORE-4.
LIBRARY
ACCN. NO 9239
SECTION. Hindi
COST RS. 8:85
DATE 29:7:91
LIBRARIAN.

अनुक्रमणिका

आधुनिक कवि

1	जयशंकर प्रसाद	3
2	मैथिलीशरण गुप्त	5
3	सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'	7
4	महादेवी वर्मा	8
5	सुमित्रानंदन पंत	10
6	रामधारीसिंह 'दिनकर'	12
7	माखनलाल चतुर्वेदी	14
8	सच्चिदानंद हीरानंद वात्स्यायन 'अज्ञेय'	17
9	बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'	18
10	केदारनाथ अग्रवाल	21
11	के.एस. वेंकटरामय्या 'वेंकटेश'	25
12	डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति	27

प्राचीन कवि

13	कबीरदास	31
14	सूरदास	33
15	तुलसीदास	36
16	बिहारीलाल	39
	कवि-परिचय	41
	कठिन-शब्दार्थ (अर्थ प्रकाशिका सहित)	53

आधुनिक कवि

जयशंकर प्रसाद

किरण

किरण ! तुम क्यों बिखरी हो आज,
रँगी हो तुम किसके अनुराग,
स्वर्ण सरसिज किंजल्क समान
उड़ाती हो परमाणु पराग।
धरा पर झुकी प्रार्थना सदृश,
मधुर मुरली-सी फिर भी मौन,
किसी अज्ञात विश्व की विकल—
वेदना-दूती-सी तुम कौन ?
अरुण शिशु के मुख पर सविलास,
सुनहली लट घुँघुराली कांत,
नाचती हो जैसे, तुम कौन ?—
उषा के अंचल में अश्रांत।
भला उस भोले मुख को छोड़,
और चूमोगी किसका भाल,
मनोहर यह कैसा है नृत्य,
कौन देता है सम पर ताल ?
कोकनद मधुधारा-सी तरल,
विश्व में बहती हो किस ओर ?
प्रकृति को देती परमानंद
उठाकर सुंदर सरस हिलोर।

स्वर्ग के सूत्र सदृश तुम कौन,
मिलती हो उससे भूलोक?
जोड़ती हो कैसा संबंध,
बना दोगी क्या विरज विशोक!
सुदिनमणि-वलय विभूषित उषा—
सुंदरी के कर का संकेत—
कर रही हो तुम किसको मधुर,
किसे दिखलाती प्रेम-निकेत?
चपल! ठहरो कुछ लो विश्राम,
चल चुकी हो पथ शून्य अनंत,
सुमनमंदिर के खोले द्वार,
जगे फिर सोया वहाँ वसंत!

मैथिलीशरण गुप्त

विहङ्गम

सौ-सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल निरन्तर बुनता हूँ,
पर तू फँसता नहीं विहङ्गम,
लाख लाख सिर धुनता हूँ।

तुझे पालने ही की मेरे
मन में है अभिलाषा,
पर तू नहीं समझता मेरी
परम परिष्कृत भाषा।
मैं तो तेरी एक तान भी
तन्मय होकर सुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल निरन्तर बुनता हूँ।

पिंजर की रचना में कितनी
दिखला रहा कला मैं,
करता हूँ इतना श्रम पंछी,
किस के लिए भला मैं?
तुझे चुगाने को अच्छे से
अच्छा चारा चुनता हूँ,
सौ सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल निरन्तर बुनता हूँ।

गूँज गया मेरा मन तेरे
मृदु-मधुरोच्चारण से,
पर विश्वास नहीं करता तू
मेरा किस कारण से?
इसी एक अपमान वह्नि से
मैं जलता हूँ, भुनता हूँ,
सौ-सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल निरन्तर बुनता हूँ।

मुझसे उड़ कर भाग भले ही
आप अविश्वासी तू,
किन्तु अन्त में इसी विश्व का
होगा हाँ, वासी तू।
देखूँ कितने गुन हैं तुझमें
गिन गिन कर मैं गुनता हूँ,
सौ-सौ ज्ञान-तन्तुओं के मैं
जाल निरन्तर बुनता हूँ।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

समर्पण

नर-जीवन के स्वार्थ सकल
बलि हों तेरे चरणों पर, माँ,
मेरे श्रम-सञ्चित सब फल।

जीवन के रथ पर चढ़कर,
सदा मृत्यु-पथ पर बढ़कर,
महाकाल के खरतर शर सह
सकूँ, मुझे तू कर दृढ़तर;
जागे मेरे उर में तेरी
मूर्ति अश्रु जल-धौत विमल
दृग-जल से पा बल, बलि कर दूँ
जननि, जन्म-श्रम-सञ्चित फल।
बाधाएँ आयें तन पर,
देखूँ, तुझे नयन-मन भर,
मुझे देख तू सजल दृगों से
अपलक, उर के शतदल पर;
क्लेदयुक्त अपना तन दूँगा,
मुक्त करूँगा तुझे अटल,
तेरे चरणों पर देकर बलि
सकल श्रेय-श्रम-सञ्चित फल।

तुम मुझ में प्रिय फिर परिचय क्या

तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या !

तारक में छबि, प्राणों में स्मृति;
पलकों में नीरव पद की गति,
लघु उर में पुलकों की संसृति,
भर लायी हूँ तेरी चंचल
और करूँ जग में संचय क्या!

तेरा मुख सहास अरुणोदय,
परछाईं रजनी विषादमय
यह जागृति वह नींद स्वप्नमय,
खेल खेल थक थक सोने दो
मैं समझूँगी सृष्टि प्रलय क्या !

तेरा अधर - विचुम्बित प्याला,
तेरी ही स्मित-मिश्रित हाला,
तेरा ही मानस मधुशाला,
फिर पूछूँ क्या मेरे साकी !
देते हो मधुमय विषयमय क्या !

रोम रोम में नन्दन पुलकित,
साँस साँस में जीवन शत शत,
स्वप्न स्वप्न में विश्व अपरिचित,
मुझमें नित बनते मिटते प्रिय !
स्वर्ग मुझे क्या निष्क्रिय लय क्या !

हारूँ तो खोऊँ अपनापन,
पाऊँ प्रियतम में निर्वासन,
जीत बनूँ तेरा ही बन्धन,
भर लाऊँ सीपी में सागर
प्रिय मेरी अब हार विजय क्या !

चित्रित तू मैं हूँ रेखा-क्रम,
मधुर राग तू मैं स्वर संगम,
तू असीम मैं सीमा का भ्रम,
काया छाया में रहस्यमय !
प्रेयसी प्रियतम का अभिनय क्या !
तुम मुझ में प्रिय ! फिर परिचय क्या !

सुमित्रानंदन पंत

भारत गीत

जन जन भारत, जन मन अभिमत
जन गण तंत्र विधाता !
गौरव भाल हिमाचल उज्ज्वल
हृदय हार गंगा जल,
कटि विन्ध्याचल, सिन्धु चरण तल
महिमा शाश्वत गाता !

हरे खेत, लहरे नद निर्झर
जीवन शोभा उर्वर,
विश्व कर्म रत कोटिक बाहु कर
अगणित पद ध्रुव पथ पर !

प्रथम सभ्यता ज्ञाता, साम ध्वनित गुण गाथा,
जय नव मानवता निर्माता
सत्य अहिंसा दाता !
जय हे जय हे जय हे, शांति अधिष्ठाता
जन गण तंत्र विधाता !

प्रयाण तूर्य बज उठे,
पटह तुमुल गरज उठे,
विशाल सत्य सैन्य, लौह भुज उठे।

शक्ति स्वरूपिणि बहुबल धारिणि वंदित भारत माता !
धर्म चक्र रक्षित तिरंग ध्वज अपराजित फहराता !
जय हे जय हे जय हे, अभय, अजय, त्राता !
जन गण तंत्र विधाता !

अनल-किरीट

लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले !
कालकूट पहले पी लेना, सुधा-बीज बोनेवाले।

(१)

धरकर चरण विजित शृंगों पर झण्डा वही उड़ाते हैं,
अपनी ही उँगली पर जो खंजर की जंग छुड़ाते हैं।
पड़ी समय से होड़, खींच मत तलवों से काँटे रुककर,
फूँक-फूँक चलती न जवानी चोटों से बचकर, झुककर।
नींद कहाँ उनकी आँखों में जो धुन के मतवाले हैं?
गति की तृषा और बढ़ती, पड़ते पग में जब छाले हैं।
जागरूक की जय निश्चित है हार चुके सोनेवाले,
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले !

(२)

जिन्हें देखकर डोल गयी हिम्मत दिलेर मरदानों की,
उन मौजों पर चली जा रही किश्ती कुछ दीवानों की।
बेफिक्री का समाँ कि तूफाँ में भी एक तराना है,
दाँतों उँगली धरे खड़ा अचरज से भरा ज़माना है।
अभय बैठ ज्वालामुखियों पर अपना मंत्र जगाते हैं,
ये हैं वे, जिनके जादू पानी में आग लगाते हैं।
रूह जरा पहचान रखें इनकी जादू-टोनेवाले,
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होने वाले !

Vyaya Evening College Library
Bangalore-560 004.

(३)

तीनों लोक चकित सुनते हैं, घर-घर यही कहानी है,
खेल रहो नेज़ों पर चढ़कर रस से भरी जवानी है। भाल Spear
भू सँभले, हो सजग स्वर्ग, यह दोनों की नादानी है।
मिट्टी का नूतन पुतला यह अल्हड़ है, अभिमानी है।
अचरज नहीं, खींच ईंटें यह सुरपुर को बर्बाद करे।
अचरज नहीं, लूट जन्नत वीरानों को आबाद करे।
तेरी आस लगा बैठे हैं पा-पाकर खोनेवाले।
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले !

(४)

सँभले जग, खिलवाड़ नहीं अच्छा चढ़ते-से पानी से,
याद हिमालय को, भिड़ना कितना है कठिन जवानी से।
ओ मदहोश ! बुरा फल है शूरों के शोणित पीने का,
देना होगा तुम्हें एक दिन गिन-गिन मोल पसीने का।
कल होगा इन्साफ, यहाँ किसने क्या किस्मत पाई है,
अभी नींद से जाग रहा युग, यह पहली अँगड़ाई है।
मंज़िल दूर नहीं अपनी दुःख का बोझा ढोनेवाले !
लेना अनल-किरीट भाल पर ओ आशिक होनेवाले !

माखनलाल चतुर्वेदी

घर मेरा है ?

क्या कहा कि यह घर मेरा है?
जिसके रवि उगें जेलों में,
संध्या होवे वीरानों में,
उसके कानों में क्यों कहने
आते हो? यह घर मेरा है?
है नील चंदोवा तना कि झूमर
झालर उसमें चमक रहे,
क्यों घर की याद दिलाते हो,
तब सारा रैन-बसेरा है?
जब चांद मुझे नहलाता है,
सूरज रोशनी पिन्हाता है,
क्यों दीपक लेकर कहते हो,
यह तेरा है, यह मेरा है?
ये आए बादल घूम उठे,
ये हवा के झोंके झूम उठे,
बिजली की चमचम पर चढ़कर
गीले मोती भू चूम उठे;
फिर सनसनाहट का ठाठ बना,
आ गई हवा, कजली गाने,
आ गई रात, सौगात लिए,
ये गुलसब्बो मासूम उठे।

इतने में कोयल बोल उठी,
अपनी तो दुनिया डोल उठी,
यह अंधकार का तरल प्यार
सिसकें बन आयो जब मलार;
मत घर की याद दिलाओ तुम
अपना तो काला डेरा है।
कलरव, बरसात, हवा ठंडी,
मीठे दाने खारे मोती,
सब कुछ ले, लौटाया न कभी,
घरवाला महज लुटेरा है।
हो मुकुट हिमालय पहनाता
सागर जिसके पद धुलवाता,
यह बंधा बेड़ियों में मंदिर,
मस्जिद, गुरुद्वारा मेरा है।
क्या कहा कि यह घर मेरा है?

पुष्प की अभिलाषा

चाह नहीं मैं सुरबाला के
गहनों में गूंथा जाऊं,
चाह नहीं प्रेमी-माला में
बिंध प्यारी को ललचाऊं,
चाह नहीं, सम्राटों के शव
पर, हे हरि, डाला जाऊं,
चाह नहीं, देवों के शिर पर,
चढ़ूं भाग्य पर इठलाऊं।
मुझे तोड़ लेना वनमाली!
उस पथ पर देना तुम फेंक,
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने
जिस पथ जावें वीर अनेक।

सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

कितनी नावों में कितनी बार

कितनी दूरियों से कितनी बार
कितनी डगमग नावों में बैठकर
मैं तुम्हारी ओर आया हूँ
ओ मेरी छोटी-सी ज्योति !
कभी कुहासे में तुम्हें न देखता भी
पर कुहासे को ही छोटी-सी रुपहली झलमल में
पहचानता हुआ तुम्हारा ही प्रभामण्डल।
कितनी बार मैं
धीर, आश्वस्त, अक्लान्त—
ओ मेरे अनबुझे सत्य ! कितनी बार...
और कितनी बार कितने जगमग जहाज़
मुझे खींचकर ले गए हैं कितनी दूर
किन पराये देशों की बेदर्द हवाओं में
जहाँ नंगे अँधेरों को
और भी उघाड़ता रहा है
एक नंगा, तीखा, निर्मम प्रकाश—
जिस में कोई प्रभामण्डल नहीं बनते
केवल चौंधियाते हैं तथ्य, तथ्य—तथ्य—
सत्य नहीं, अन्तहीन सच्चाइयाँ...
कितनी बार मुझे
खिन्न, विकल, संत्रस्त—
कितनी बार !

एक नीम

खड़ा हुआ है एक नीम यह, किसी किसान दीन के द्वारे,
मानो कोई अलख जगाता सिद्ध खड़ा हो बिना सहारे;
ध्यान-मग्न-सा असंलग्न-सा, वीतराग यह वल्कलधारी,
कितनी ही दुख-दरद-कथाएँ देख चुका है बारी-बारी;
खड़ा हुआ है उस तापस-सा जिसकी सन्तत-चिन्तन-ज्वाला—
मानो देगी नवल सँदेसा अभिनव ज्योति जगानेवाला।

अगणित व्यथा वेदनाओं के इसने यहाँ किए हैं दर्शन,
अगणित बार विलोका इसने कृषकों के दृग-जल का वर्षण
इसने सुघड़ किसान-वधूटी देखी चिथड़ों में शरमाते,
इसने नव दम्पति अवलोके केवल महुओं पर रह जाते;
इसने देखे नन्हे बच्चे नित बिललाते, सूखे-सूखे,
इसने देखे सभी ग्रामजन जीवन्मृत-से नंगे-भूखे।

जिस घर के दरवाज़े तरु है, वह घर अब सुनसान हुआ है;
साँय-साँय करता है; मानो वह एकान्त श्मशान हुआ है,
इस घर नामक खंडहर में जो कृषिजीवी दम्पति रहते थे,
जो कु-समाज-व्यवस्था का अति अनाचार निशिदिन सहते थे,
वे ही अब दुर्भिक्ष-प्रताड़ित, जर्जर देह, भूख के मारे,
चले गये हैं कहीं! नीम को छोड़ अकेला अपने द्वारे!!

रोयीं घर की टूटी भीतें, बूढ़ा नीम फूटकर रोया;
अम्बर ने भी बिलख-बिलखकर, माँ धरती का चीर भिगोया;
राजपुत्र सिद्धार्थ चला था निजगृह त्याग अमरता पाने;
और उसीके देश-निवासी चले खोजने दाने-दाने !
कौन पा सका परम अमर-पद यों बिन मुट्ठी-भर दानों के ?
कैसे पाएँ जन अपनापन, जबकि पड़े लाले प्राणों के ?

दशाब्दियों का वृद्ध नीम यह अमित व्यथित है अन्तरतर में
कहो छिपाए रहे कब तलक अमित व्यथा निज अभ्यंतर में ?
हहर-हहर कर तड़प रही है इस पादप की पत्ती-पत्ती,
मानो संचित दुख की बातें कह डालेगी रत्ती-रत्ती !
यह पुराण-साक्षी जड़-पादप, कुछ कहने को है आतुर-सा
यह मौनी भी आज बन रहा नव सन्देश-वहन-चातुर-सा !

मैं पहुँचा झुटपुटे समय उस एकाकी तरुवर के नीचे,
औ' कुछ क्षण को मैंने अपने भारी-भारी लोचन भींचे;
नीम उसी क्षण मुझसे बोला—"ओ गतिमय, दो पैरों वाले,
मुझ निर्गति, मुझ अचल, विवश की आकर कुछ तो व्यथा बँटा ले !!
तू कब तक देखता रहेगा नित्य उजड़ते यों घर के घर ?
कब तक तांडव नृत्य करेगा यह विभीषिका इस धरती पर ?

"बोल द्विपद, वे मेरे साथी, वे इस टूटे घर के वासी,
किधर गए वे, जिनके बिन यह कुटी हो रही आज रुआँसी ?
बरसों के मेरे सहवासी मुझे कर गए आज अकेला;
कहाँ कृषक वह जो बचपन में मेरी छाया में था खेला ?
कहाँ गई वह कृषक-वधू जो नित, करती थी हुँसी-ठिठोली ?
सावन-भादों में रखती थी जो हँस मेरी पकी निबौली ?

"ओ तू शिक्षित मनुज, बता तो, कब भड़केगा तव क्रोधानल?
बोल, अरे, सुस्थिर कब होगी तेरी चित्त-वृत्ति दोलाचल?
भवति-न-भवति कुशंकाओं में तू कब तक यों पड़ा रहेगा?
उकठ-काठ-मारा-सा तू यों पथ में कब तक खड़ा रहेगा?
मैं अग भी बदला करता हूँ विकट काल-परिवर्तन के संग
ओ जंगम, तू क्या न लखेगा बदले हुए ज़माने का रँग?

"कभी-कभी मेरी डालों पर दूर देश के पंछी आकर,
उन देशों के जन-परिवर्तन-गायन गाते मुझे सुनाकर!
सिहर उठा करता हूँ मैं वे बातें सुन निज अन्तरतर में,
और निरख अपने मानव को रोया करता हूँ निशि-भर मैं।
क्या वह बल, वह अतुल पराक्रम मम मानव में नहीं जगेगा?
अरे बोल, विप्लव के रस में कब तक मेरा मनुज पगेगा?

"कब तक निरखूँ निज मानव के जीवन की वेदना, व्यथा यह?
कब तक शरमाऊँ मैं सुन-सुन अन्य जनों की कीर्ति-कथा वह?
तू कब तक सीखेगा करना प्रलयकर हुंकार भयंकर?
कब प्रारम्भ करेगा सँग-सँग तू सिरजन-संहार भयंकर?
बोल, अरे, ओ प्रतिनिधि मानव, तू शिक्षित, संस्कृत, विज्ञानी।
तूने समय-बयार-दिशा-गति क्या अब तक न अरे, पहचानी?"

मैंने उस क्षण सुनी नीम की यह कटु सत्य व्यथा की वाणी;
और छलछला उठा उष्ण-सा, मेरे मीलित दृग में पानी!
किन्तु किया अनुभव कि हृदय में सुलगी है विप्लव-चिनगारी;
मैंने देखा कि उठ रहे हैं निद्रा से मेरे नर-नारी!
मैंने देखा दूर क्षितिज में विहँस रहे हैं मेरे सपने!!
मैं बोला—ओ निम्ब, बिलख मत; आते हैं अब शुभ दिन अपने!"

केदारनाथ अग्रवाल

बसन्ती हवा

हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ।
वही हाँ, वही जो
युगों से गगन को
बिना कष्ट-श्रम के
सँभाले हुए हूँ—
वही हाँ, वही जो
धरा का बसन्ती
सुसंगीत मीठा
गुँजाती फिरी हूँ—
वही हाँ, वही जो
सभी प्राणियों को
पिला प्रेम आसव
जिलाए हुए हूँ—
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ!

क़सम रूप की है
क़सम प्रेम की है
क़सम इस हृदय की
सुनो बात मेरी
अनोखी हवा हूँ,
बड़ी बावली हूँ,

बड़ी मस्त मौला
नहीं कुछ फ़िकर है
बड़ी ही निडर है
जिधर चाहती है
उधर घूमती है
मुसाफ़िर अजब है
न घर-बार मेरा
न उद्देश्य मेरा
न इच्छा किसी की
न आशा किसी की
न प्रेमी, न दुश्मन
जिधर चाहती है
उधर घूमती है
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

जहाँ से चली मैं
जहाँ को गई मैं
शहर, गाँव, बस्ती
नदी खेत, निर्जन
हरे खेत, पोखर
झुलाती चली मैं
झुमाती चली मैं
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ।

चढ़ी पेड़ महुआ
थपाथप मचाया

गिरी धम्म से फिर
चढ़ी आम ऊपर
उसे भी झकोरा
किया कान में 'कू'
उतर कर भागी मैं
हरे खेत पहुँची
वहाँ गेहुँओं में
लहर खूब मारी
पहर-दो पहर क्या
अनेकों पहर तक
इसी में रही मैं !
खड़ी देख आलसी
लिये शीश कलसी
मुझे खूब सूझी
हिलाया – झुलाया
गिरी पर न कलसी !
इसी हार को पा
हिलाई न सरसों
झुलाई न सरसों
मजा आ गया तब
न सुध-बुध रही कुछ
बसन्ती नवेली
भरे गात में थी
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ,

मुझे देखते ही

अरहरी लजाई
मनाया — बनाया
उसे भी न छोड़ा
पथिक आ रहा था
उसी पर ढकेला
लगी जा हृदय से
कमर से चिपक कर
हँसी जोर से मैं
हँसी सब दिशाएँ
हँसे लहलहाते
हरे खेत सारे
हँसी चमचमाती
भरी धूप प्यारी
बसन्ती हवा में
हँसी सृष्टि सारी
हवा हूँ, हवा मैं
बसन्ती हवा हूँ !

के.एस. वेंकटरामय्या 'वेंकटेश'

जीवन अंबर

जीवन है सुख दुख का अंबर,
जीवन है सुख दुख का सागर ।।

दुख का ताना सुख का बाना
प्रति दिन प्रति पल बुनते जाना।
जीवन अंबर सुखद मनोहर
जीवन सुंदर अश्रु मधुरतर।।

दुख का इक क्षण पीडा करता
सुख का इक क्षण पीडा हरता।
मिलकर दोनों जीवन भरते
जीवन अंबर बुनते जाते।।

जीवन सरिता बहती जाती
सुंदर कविता रचती जाती।
जीवन है जीने से सुन्दर
मानव है दुख से ही नश्वर।।

जीवन नैया तिरती जाती
कभी किनारे दुख के लगती।
फिर तटपर सुख के आती
यों ही आगे बढ़ती जाती।।

इन्द्र धनुष सा जीवन अंबर
सुख दुख का इक गीत निरंतर।
कभी बरसता कभी विहँसता
बढ़ता जाता अपने पथ पर।।

भानु दिवा में उदित प्रखरतर
करता जीवन ज्वलित तापकर।
सोम निशा में उदित भयंकर
करता जीवन शीतल सुन्दर।।

निशि दिन हैं जीवन के साखी
रवि-शशि ने अंबर से भाखी।
जीवन है सुख दुख से पूरण
जीवन है सुख दुख से भूषण।।

कड़ुआ मीठा जीवन रस का
भरता जाता मानव गागर।
फिर फिर रीता फिर फिर भरता
प्रति दिन प्रति पल होता रहता।।

जीवन है सुख दुख का अंबर
बुनता जाता निशि दिन नरवर।।

डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति

हमको मत रोको

अब वक्त नहीं चिंतन करने-हम आग जुटाने निकले हैं
हम को मत रोको, कंधों पर आकाश उठाने निकले हैं।
मत बोलो, सुनने गुनने को ये कान आज तैयार नहीं
मत बोलो, कुछ अपनाने को ये प्राण आज तैयार नहीं
प्राणों में लावा की जमना आँखों में पावक की गंगा
लेकर उर में अँधड़ आँधी हम स्वर्ग हटाने निकले हैं...

अब तक थे हम भी अपने ही अब बने पराये निकले हैं
अब तक थे शिशु सब हाथों के, अब हाथ बढ़ाये निकले हैं
सह लीं रावण की सब बातें सह लीं दुर्योधन की लातें
अब राम पार्थ के धनुष लिये—टंकार जगाने निकले हैं...

क्या कहा? 'रात है शेष अभी'—हम नए सूर्य बन जायेंगे
क्या कहा? 'मौत की आहट है!'—हम जीवन गान सुनायेंगे
क्या कहा? 'साँप फुफ़कार रहे!'–हम उनके सिर पर नाचेंगे
जिसने घूरा है, उसके दृग-तलवार चलाने निकाले हैं—

हम भी अब तक पत्थर पत्थर के सम्मुख हृदय नवाते थे
हम भी अब तक अपनी जुबान की बिजली अनय बुझाते थे
पर अब पत्थर में अंगारों की जीभ लगाने निकले हैं
तूफ़ान और आँधी के उसको गीत सिखाने निकले हैं...

Vijaya Evening College Library
Bangalore-560 004

गांधी के घर में साँपों की बाँभियाँ बनायी जाती हैं
गौतम के घर में तलवारों की तान सुनाई जाती है
ठहरो ठहरो देखेंगे हम—हाँ, देख लिया, अब देखो तुम
गांधी गौतम के मंदिर को हम शुद्ध कराने निकले हैं...

सोचा है तुमने, सिंहासन खाली है, उस पर चढ़ सकते
सोचा है, तूफाँ शांत हुआ—अब आगे आगे बढ़ सकते
सिंहासन पर से खींच तुम्हें जनपथ में लाने निकले हैं
हैं पाप तुम्हारे जितने भी—हम ढहा बहाने निकले हैं...

ठहरो, सीता का मंदिर है—इस ओर बढ़ाना पाँव नहीं
ठहरो, यह काबा काशी है—टुक पाप के लिए ठाँव नहीं
ठहरो, तुलसी का मानस है—मेंढ़क बगुलों का गाँव नहीं
सिर कफ़न बाँध, मानवता का मांगल्य निभाने निकले हैं...

हाँ, देख लिया, इस राज घाट से निकल रहा परबत कोई
हूँ देख रहा, हैं लाँघ रहे सागर को सेवा व्रत कोई
हम मंत्र फूंक अब फूलों से अंगार उगाने निकले हैं
शांति के भाल पर अरुण बिंदु शृंगार सजाने निकले हैं।

प्राचीन कवि

साखी

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिवे कूँ सोभा नहीं, देख्या ही परवान ॥१॥

अंतरि कँवल प्रकासिया, ब्रह्म बास तहाँ होइ।
मन भँवरा तहाँ लुबधिया, जाणैंगा जन कोइ ॥२॥

सूर समांणां चंद मैं दुहूँ किया घर एक।
मनका च्यंता तब भया, कछू पुरिवला लेख ॥३॥

पांणीं ही तें हिम भया, हिव ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछू कह्या न जाइ ॥४॥

सुरति समांणी निरति मैं, निरति रही निरधार।
सुरति निरति परचा भया, तब खूले स्यँभ दुवार ॥५॥

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नांहि।
सब अँधियारा मिट गया, जब दीपक देख्यां मांहि ॥६॥

मानसरोवर सुभर जल हंसा केलि कराहिं।
मुकताहल मुकता चुगैं, इब उड़ि अनत न जाहिं ॥७॥

आकासे मुलि औंधा कुवाँ, पाताले पनिहारि।
ताका पांणीं कोउ हंसा पीवै, विरला आदि बिचारि ॥८॥

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समाणी समद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥९॥

नैनां अंतरि आव तूं, ज्यूं हौं नैन झंपेऊँ।
नां हौं देखौं और कूं, नां तुझ देखन देऊँ ॥१०॥

कबीर कूता राम का, मुतिया मेरा नाउं।
गलै राम की जेबड़ी, जित खैंचैं तित जाउं॥११॥

कबीर इस संसार में, घणै मनिष मति हींण।
राम नाम जांणै नहीं, आए टापा दीन॥१२॥

मांइ बिड़ाणी बाप बिड़, हम भौं मझि बिडांह।
दरिया केरी नाव ज्यूं, संजोंगे मिलियांह॥१३॥

मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलकै सीसि॥१४॥

जन कबीर का सिषर घर, वाह सलैली सैल।
पाव
पांव न टिकै पपील का लोभनि लादे बैल॥१५॥

कबीर माया मोह की, भई अंधारी लोइ।
जै सूते ते मुसि लिए, रहे बसत कूं रोइ॥१६॥

बाड़ि चढ़ती बेलि ज्यूं, उलझी आसा फंद।
टूटै पणि छूटै नहीं, भई न बाचा बंध॥१७॥

सतगुरु की महिमा अनँत, अनँत किया उपकार।
लोचन अनँत उघाड़िया, अनँत दिखावणहार॥१८॥

ग्यान प्रकास्या गुरु मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविन्द कृपा करी, तब गुरु मिलिया आइ॥१९॥

जल में कुंभ कुंभ में जल है, बाहर भीतर पानी।
फूटा कुंभ जल जलहि समाना, यह तथ्य कथ्यो ग्यानी॥२०॥

विनय

तजौ रे मन, हरि-विमुखन को संग।
जिनके संग कुमति उपजत है, परत भजन में भंग॥
कहा होत पय-पान कराए, विष नहि तजत भुजंग।
कागहि कहा कपूर चुगाए, स्वान न्हावाए गंग॥
खर को कहा अरगजा-लेपन, मरकट भूषन अंग।
गज को कहा सरित अन्हवाये, बहुरि धरै बडि ढंग॥
पाहन पतित बान नहिं बेधत, रीतौ करत निषंग।
सूरदास कारी कामरि पर, चढ़त न दूजा रंग॥१॥

अब कै नाथ मोहि उधारि।
मगन हौं भव-अंबुनिधि में, कृपासिंधु मुरारि॥
नीर अति गंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग।
लिए जात अगाध जल कों, गहे ग्राह अनंग॥
मीन इंद्री तनहिं काटत, मोह अध सिर भार।
पग न इत उत धरन पावत, उरझि मोह सिवार॥
क्रोध-दम्भ-गुमान-तृष्ना पवन अति झकझोर।
नाहिं चितवन देत सुत-प्रिय, नाम-नौका ओर॥
थक्यों बीच बिहाल, बिह्वल, सुनों करुना मूल।
स्याम, भुज गहि काढ़ि लीजै, सूर ब्रज के फूल॥२॥

कीजै प्रभु अपने विरद की लाज।
महा पतित, कबहूँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज॥

माया सबल धान धन बनिता, बाँध्यों ही इहि साज।
देखत सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज॥
कहियन पतित बहुत तुम तारे, स्रबननि सुनी आवाज।
दई न जात खेवट उतराई, चाहत चढ़तौ जहाज॥
लीजै पार उतारि सूर कौं, महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत प्रभु तुमहौ, सदा गरीब-निवाज॥३॥

लीला

कर पग गहि, अंगुटा मुख मेलत।
प्रभु पौढ़े पालनें अकेले, हरपि हरपि अपनै रंग खेलत॥
सिव सोचत बिधि बुद्धि विचारत, बट बाढ्यो सागर-जल झेलत।
बिडर चले घन प्रलय जानि कै, दिगपति दिग-दंतीनि संकेलत।
मुनि मन भीत भये, भुव कंपित, सेष सकुचि सहसौ फन पेलत।
उन ब्रज-वासिनि बात न जानी, समुझे सूर सकट पग टेलत॥१॥

किलकत कान्ह घुटरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद कै आँगन, बिंब पकरिबै धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कौं, करसौं पकरन चाहत।
किलकि हँसत राजत द्वै दतियाँ, पुनि पुनि तिहिं अवगाहत॥
कनक-भूमि पर कर-पग-छाया यह उपमा इक राजति।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि वसुधा, कमल बैठकी साजति॥
बाल-दसा-सुख निरखि जसोदा, पुनि-पुनि नन्द बुलावति।
अँचरा-तर तै ढाँकि सूर के प्रभू कौ दूध पियावति॥२॥

खेलत मैं को काकी गुसैयाँ।
हरि हारे जीते श्रीदामा, बरबस ही कत करत रिसैयाँ।।
जाति-पाँति हमतें बड़ नाहीं, नाहीं बसत तुम्हारी छैयाँ।
अति अधिकार जनावत यातें जातें अधिक तुम्हारे गैइयाँ।।
रूहठि करे तासौं को खेले, रहे बैठि जहँ-तहँ सब ग्वैयाँ।
सूरदास प्रभु खेल्यौह चाहत, दाउँ दियौ करि नंद-दुहैयां।।३।।

सखा कहत हैं स्याम खिसाने।
आपुहिं आप बलकि भये ठाढ़े अब तुम कहा रिसाने।।
बीचहिं बोल उठे हलधर तब याके माई न बाप।
हारि-जीति कछु नेंकु न समुझत, लरिकनि लावत पाँत।।
आपुन हारि सबनि सौं झगरत, यह कहि दियो पठाइ।
सूर स्याम उठि चले रोई कै, जननी पूछति धाइ।।४।।

पुष्प वाटिका प्रसंग

कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन सन रामु हृदय गुनि॥
मानहुँ मदन दुंदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वा बिजय कहँ कीन्ही॥
अस कहि फिरि चिताए तोहि ओरा। सियमुख ससि भए नयन चकोरा
भए बिलोचन चारु अचंचल। मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल॥
देखि सीय सोभा शुख पावा। हृदय सराहत बचनु न आवा॥
जनु विरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई॥
सुँदरता कहुँ सुंदर करई। छबिगृह दीपसिखा जनु बरई॥
सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी॥

दो०–सिय सोभा हिय बरनि प्रभु, अपनी दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि॥

तता जनकतनया यह सोई। धनुषजग्य जेहि कारन होई॥
पूजन गौरि सखीं लैं आई। करत प्रकास फिरई फुलवाई॥
जासु बिलोक अलौकिक सोभा। सहज पुनीत मोर मनु छोभा॥
सो सबु कारन जान विधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारी न हेरी॥
जिन्ह कै लहहिं न रिपु रन पोठी। नहीं लवहिं परतिय मनु डीठी॥
मंगन लहहिं न जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥

दो०–करत बतकहि अनुज सन, मन सियरूप लुभान।
मुख सरोज मकरंद छबि, करै मधुप इव पान॥

चितबति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गए नृप किसोर मनु चिंता॥
जहँ बिलोक मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी॥
लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए॥

देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निजनिधि पहिचाने।।
थके नयन रघुपति छबि देखें। पलकन्हिहूँ परिहरीं निमेषें।।
अधिक सनेहँ देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी।।
लोचन मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी।।
जब सिय सखिन्ह प्रेम बस जानीं। कहि न सकहिं कछु मन सकुचानीं

दो०–लताभवन तें प्रगट भये, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग विमल बिधु, जलद पटल बिलगाई।।

सोभा सीवें सुभग दोउ बीरा। नील पीत जलजाब सरीरा।।
मोरपंख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के।।
भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छबि छाए।।
बिकट भृकुटि कच धूधरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे।।
चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला।।
मुखछबि कहि न जाई मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं।।
उर मनि माल कंबु कल ग्रीवा। काम कलभ कर भुज बल सींवा।।
सुमनसमेत बाम कर दोना। सावँरा कुअँर सखी सुठि लोना।।

दो०–केहरी कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि, बिसरा सखिन्ह अपान।।

डरि धरिजु एक आलि सयायी। सीता सन बोली गहि पानी।।
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू।।
सकुचि सीये तब नयन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंध निहारे।।
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिर पिता पनु मनु अति छोभा।।
परबस सखिन्ह लखी जब सीता। भयउ गहरु सब कहहिं सभीता।।
पुनि आउब एहिबिरियाँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली।।
गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भयउ बिलंबु मातुभय मानी।।
धरि बड़ि धीर रामु उर आने। फिरी अपनपउ पितुबस जाने।।

दो०–देखन मिस मृग बिहग तरु, फिरइ बहोरि बहोरि।
निरखि निरखि रघुबीर छबि, बाढ़ई प्रीति न थोरि॥

जानि कठिन सिव छाप बिसूरति। चली रखि उर स्यामल मूरति॥
प्रभु जब जाता जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानि॥
परम प्रेममय मृदुमसि किन्ही। चारु चित बीतीं लिखि लीन्ही॥
गई भवानी भवन बहोरी। बंदि चरन बोली कर जोरी॥
जय जय गिरिबर राज किसोरी। जय महेस मुख चंद चकोरी॥
जय गजवदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुति गाता॥
नहिं तब आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाउ बेद नहीं जाना॥
भव भव विभव पराभव कारिनि। बिस्व विमोहनि स्ववस बिहारिनि

दो०–पतिदेवता सुतीय महूँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेष॥

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारी पिआरी॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥
मोर मनोरथ जानहु नीकें। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउँ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥
बिनय प्रेम बस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी॥
सादर सियँ प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरषु हियँ भरेऊ॥
सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी॥
नारद बचन सदा सुचि साँचा। सो बरु मिलहि जाहिं मनु राँचा॥

त्रय ताप :- आधि भौतिक, आधि दैविक
आध्यात्मिक

बिहारीलाल

विनय

मेरी भव-बाधा हरौ, राधा नागरि सोइ।
जा तन की झाईं परैं, स्यामु हरित-दुति होइ ॥१॥

जम-करि-मुँह-तरहरि पर्‌यौ, इहिं धरहरि चित लाउ।
विषय-तृषा परिहरि अजौं, नरहरि के गुन गाउ ॥२॥

या अनुरागी चित्त की, गति समुझै नहिं कोइ।
ज्यौं-ज्यौं बूड़ै स्याम रँग, त्यों-त्यों उज्जल होइ ॥३॥

मैं समुझ्यौं निराधार, यह जग काँचो काँच सौ।
एकै रूप अपार, प्रतिबिम्बित लखियतु जहाँ ॥४॥

तजि तीरथ, हरि-राधिका-तन-दुति करि अनुरागु।
जिहिं ब्रज-केलि-निकुंज-मग, पग-पग होतु प्रयागु ॥५॥

मैं तपाइ त्रयताप सौं, राख्यौ हियौ हमामु।
मति कबहुँक आएँ यहाँ, पुलकि पसीजै स्यामु ॥६॥

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन-विस्तारन-काल।
प्रगटत निर्गन निकट रहि, चंग-रंग भूपाल ॥७॥

भक्ति-भावना

मोहूँ दीजै मोषु, ज्यों अनेक अधमनु दियौ।
जौ बाँधैं ही तोषु, तौ बाँधौं अपनैं गुननु ॥८॥

मोहन-मूरति स्याम की, अति अदभुत गति जोइ।
बसतु सु चित अंतर, तऊ प्रतिबिंबितु जग होइ ॥९॥

करौ कुबत जगु, कुटिलता तजौं न, दीनदयाल।
दुखी होहुगे सरल हिय बसत, त्रिभंगी लाल ॥१०॥

कवि-परिचय

आधुनिक कवि

जयशंकर प्रसाद

जयशंकर प्रसाद जी का जन्म सन् 1890 में उत्तर भारत में काशी में हुआ। 9 वर्ष की अवस्था से ही उन्होंने काव्य-रचना आरंभ कर दी। उन्होंने लगभग 30 ग्रंथों की रचना की जिनमें काव्य, नाटक, उपन्यास, कहानी, निबन्ध आदि सब तरह की साहित्यिक रचनाएँ मौजूद थीं। उनमें हिन्दी महाकाव्य 'कामायनी', खण्ड काव्य 'आंसू' और नाटक 'स्कन्दगुप्त' आदि बड़े मशहूर हुए।

प्रसाद जी ने काव्य के सभी रूपों को अपनाया हैं—काव्य रूपक ('करुणालय'), काव्य-कथाएं ('चित्रधार'), गीत-काव्य ('लहर'), खण्ड-काव्य ('आँसू') और महाकाव्य ('कामायनी')। उन्होंने प्रकृति के दर्शन से अनूठी प्रेरणाएँ प्राप्त की हैं। जीवन के संगीत, सौंदर्य का भान, अतीत की स्मृति, जगत की अस्थिरता, वेदना का अमित-स्वरूप, जीवन का आदर्श और न जाने क्या-क्या गंभीर विचार उनकी कविताओं में छिपे हैं।

प्रसाद जी के काव्य में प्रकृति साकार हो उठी है। कल्पना और चिंतन से समन्वित होकर प्रस्फुटित भाव और भी अधिक चुभन लेकर आये हैं। माधुर्य की दृष्टि से तो प्रसाद जी ने मैदान मार लिया है। भारतीय संस्कृति, भारत का अतीत गौरव और प्रेम का विस्तृत स्वरूप प्रसाद जी की कविताओं में घर कर चुके हैं। भाषा की प्रवणता, छंदों की योजना, चित्र खींचने की क्षमता और तत्सम शब्द भंडार विपुलता मानो प्रसाद जी की निजी संपत्ति बन गयी है।

मैथिलीशरण गुप्त

मैथिलीशरण गुप्त जी का जन्म उत्तर भारत के झांसी के जिले में चिरगांव में सन् 1886 को हुआ। उन्होंने हिन्दी, संस्कृत और बंगला में विशेष अध्ययन किया था। उन्होंने भारतीय संस्कृति और पुनरुत्थानयुग की विचारधारा को अपने काव्य में यत्र, तत्र और सर्वत्र किया। इसी कारण वे राष्ट्रीय कवि कहलाए और अनेक साहित्यिक संस्थाओं से अनगिनत पुरस्कार मिले।

मैथिलीशरण गुप्त जी की रचनाओं में विभिन्न विशेषताएँ दीख पड़ती हैं। उन्होंने नारी को उपेक्षित स्थान से उठाकर निजी गौरवमय स्थान दिलाया है, पौराणिक पुरुषों की कथा में समाज सुधार समावेश करके जनता को सांकेतिक चेतावनी दी है। उनकी फुटकर कविताओं में राष्ट्रीय संस्कृति की चेतना जाग उठी है। प्रकृति के माध्यम से अंतरवृत्तियों का निरूपण, मानवता का प्रकाशन, प्रतीकात्मकता आदि उनकी रचनाओं में लक्षित होते हैं।

भाषा की दृष्टि से देखें तो गुप्त जी का योगदान बहुत महत्वपूर्ण है। खडी बोली की प्रचुरता काव्य के क्षेत्र में उन्हीं के कारण हुई। खडी बोली की भाषा को परिष्कृत और परिमार्जित करने का श्रेय उन्हीं को मिलता है। उन्होंने भाषा को मुहावरेदार बनाया, सरस और लोकप्रिय बनाया।

गुप्त जी की रचनाएँ पचास से ज़्यादा हैं। इनमें बड़े मशहूर काव्य हैं—साकेत, जयभारत, यशोधरा, द्वापर, पंचवटी आदि।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

पं० सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला' का जन्म सन् 1897 में उत्तर प्रदेश के उन्नाव जिले में हुआ। घर पर ही उन्होंने अध्ययन किया और कुछ समय बाद वे 'समन्वय' पत्र का संपादक बने। उन्होंने हिन्दी में कविता,

कहानी, उपन्यास और निबन्ध आदि की रचना करके प्रसिद्ध साहित्यकार बने। उनकी रचनाओं में 'परिमल', 'गीतिका' और 'अनामिका' बहुत प्रसिद्ध हुए।

निराला का प्रकृति वर्णन ऋतुओं, प्रकृति के विभिन्न अंगों और प्रतीक-विधान योजनाओं के अंतर्गत विशेष रूप से लक्षित होता है। 'जुही की कली' में प्रकृति-पुरुष का उन्मुक्त प्रेम बिंबित है।

निराला के काव्य में प्रेम कभी पुरुष द्वारा, कभी नारी द्वारा व्यक्त होता है जिसमें आत्मनिवेदन की गहराई लक्षित होती है। शरीर तथा मन के सौंदर्य का वर्णन हुआ करता है। अध्यात्म के क्षेत्र में निराला जी अद्वैतवाद, निर्गुण भाव और भक्ति की अनन्य भावना पर क्रमशः रचनाएँ कर चुके हैं।

निराला जी की राष्ट्रीय भावना उनकी अनेक कविताओं में व्यक्त हुई है। उन्हें वर्तमान की अपेक्षा अतीत की ओर खिंचावट अधिक थी। मुक्त छंदों के प्रयोग में तो उन्होंने मैदान मार लिया है।

परमात्मा के प्रति जिज्ञासा, मधुर भावनाओं की अनुभूति, देश भक्ति की गरिमा और ओज पूर्ण भाषा का मुक्त छंद में प्रयोग—ये सब निराला जी की कविताओं की जान हैं।

महादेवी वर्मा

आधुनिक हिन्दी की प्रसिद्ध कवयित्री महादेवी वर्मा जी का जन्म सन् 1907 में फर्रूखाबाद में हुआ। वे हिन्दी में एम.ए. करके प्रयाग महिला विद्यापीठ की प्रधानाचार्या बनीं।

महादेवी जी ने छायावाद और रहस्यवाद से प्रभावित होकर काव्य के क्षेत्र में पदार्पण किया और उनकी कविताएँ 'नीरज', 'रश्मि', 'नीरजा', 'सांध्यगीत' और 'दीपशिखा' में प्रकाशित हुए।

महादेवी जी की कविताएँ प्रेम, करुणा और विरह वेदना से ओत प्रोत हैं। पीडा का मधुर अनुभव और विरह का अनोखापन प्रकृति के माध्यम से समझाए गए हैं। उनकी कविताओं में कभी छायावाद का पुट मिलता है तो कभी रहस्यवाद की झलक भी मिलती है।

महादेवी जी की भाषा खडी बोली है पर उसमें संस्कृत शब्दों की विपुलता। कविताएँ गीत-प्रधान हैं और वेदना-भाव उनकी जान है जो आत्मा और परमात्मा के व्यवधान को मिटाता है। किसी ने कहा है—'महादेवी हृदय से भक्त है, स्वर में कवि है और संगीत में गायक है।'

सुमित्रानंदन पंत

आधुनिक हिन्दी साहित्य के अत्यंत श्रेष्ठ कवियों में श्री सुमित्रानंदन पंत जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे छायावादी काव्य धारा के प्रमुख कवि थे। उनका जन्म सन् 1900 में उत्तर भारत के अलमोडा के पास हुआ। माँ की गोद से वंचित होकर वे प्रकृति की गोद में ही पले। छोटी उम्र में ही उन्होंने कविताएँ लिखीं और अपनी अद्भुत प्रतिभा का परिचय दिया।

पंत जी कोमल भावनाओं के कवि थे। उनकी रचनाओं में प्रकृति सौंदर्य, नारी की कोमलता और देश भक्ति की गहराई विशेष रूप से लक्षित होते हैं। युग चेतना के अनुसार उनकी साहित्यिक धारणाएँ भी नयी दिशाएँ ग्रहण करती चलीं। आरंभ में उनकी कविताएँ छायावाद को अपनाकार चलीं। फिर गांधीवाद, प्रगतिवाद, अरविंद के सिद्धांत तथा दार्शनिकवाद को अपनाती चलीं। उनके 'चिदंबरा' काव्य को 'ज्ञानपीठ पुरस्कार' भी मिला।

पंत जी की कविताओं की विशेषताएँ ये हैं—कोमलकांत पदावली, वर्ण-मैत्री, ध्वनि-चित्र, संगीत और समुचित छंद-बन्ध। पंत जी की वाणी में—'कविता हमारे प्राणों का संगीत है और छंद हृदय कंपन।'

Vijaya Evening College Library
Bangalore-560 004.

रामधारीसिंह 'दिनकर'

श्री रामधारी सिंह दिनकर जी का जन्म सन् 1908 को मुंगेर जिले (बिहार) के सिमरिया गाँव में एक किसान के परिवार में हुआ। कुछ समय तक पोस्ट-ग्रेजुएट कॉलेज मुजफ्फरपुर में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष नियुक्त हुए। फिर भागलपुर विश्वविद्यालय के उपकुलपति तथा केन्द्रीय गृह मंत्रालय में हिन्दी 'सलाहकार' नियुक्त हुए। उनके अनेक काव्य ग्रंथ प्रकाशित हो चुके हैं—प्रण-भंग, रेणुका, हुंकार, ऊर्वशी, कुरुक्षेत्र, रश्मिरथी, परशुराम की प्रतीक्षा आदि।

'दिनकर' के काव्य की दो अपूर्व विशेषताएँ हैं—ओज और कोमलता। राष्ट्रीय चेतना और मानवता के सुधार की भावना से हिलमिलकर उनके काव्य में ओज बड़े सुंदर ढंग से व्यक्त हुआ है। विदेशी शासन के दमन-चक्र के विरुद्ध उन्होंने रुद्र और भवानी का आह्वान किया। राष्ट्रीय एकता को कायम रखने के लिए कुरुक्षेत्र की लड़ाई नए सिर से सुनाई और अहिंसा का पूरा-पूरा समर्थन किया। गणतंत्र की गरिमा समझाते हुए उन्होंने घोषित किया—'सिंहासन खाली करो कि जनता आती है।'

दिनकर जी की कुछ रचनाओं में प्रेम की भावना उमड पडी है। यौवन का संधिकाल, सौंदर्य की छटा और विरह-व्यथा की चुभन आदि से वे रचनाएँ ओत प्रोत हैं। उनका प्रेम लौकिक आकांक्षा से लेकर अध्यात्म की चोटी तक फैला हुआ लक्षित होता है।

दिनकर जी का व्यक्तित्व बहुमुखी है—जाने माने कवि, अनोखा सुधारक, बेजोड साहित्यालोचक और प्रौढ लेखक। ऐसे सफल साहित्यकार को साहित्य अकादमी के पुरस्कार का मिलना सर्वथा समुचित है।

माखनलाल चतुर्वेदी

पं० माखनलाल चतुर्वेदी जी का जन्म सन् 1888 में मध्यप्रदेश के होशिंगाबाद जिले में हुआ। उनके युवा जीवन की कुछ दुखद घटनाएँ उन्हें और भी कर्मवीर बना दिया। वे पहले क्रांतिकारी दल के सदस्य थे फिर गांधीजी के प्रभाव में आये। स्वाधीनता संग्राम में उन्हें तीन बार जेल हुई। वहीं उन्होंने अनेक कविताएँ लिखीं। उनका काव्य नाम बना—'एक भारतीय आत्मा।'

माखनलाल जी के अनेक काव्य-ग्रंथ प्रकाशित हुए जिनमें 'हिम-किरीटिनी', 'हिम तरंगिनी', 'युग चरण' बड़े प्रसिद्ध हैं। उनकी कविताओं में आज़ादी की चिनगारियाँ सुलगती हैं। 'पुष्प की अभिलाषा' तो बच्चा-बच्चा दोहराता है। उनकी कविताएँ देखने में सरल और समझने में बड़ी चुभन का अनुभव देनेवाली होती हैं। देश-भक्ति उनमें कूट-कूट भरी हुई लक्षित होती है।

सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

सच्चिदानंद 'अज्ञेय' का जन्म सन् 1911 को देवरिया जिले में हुआ। भारतीय आंदोलन में सक्रिय भाग लेकर बाद में अमेरिका में कैलिफोर्निया विश्वविद्यालय में भारतीय संस्कृति और शास्त्र के अध्यापक बने। कुछ समय तक यूरोप में रहकर वे भारत लौटे और दिल्ली को स्थायी निवास-स्थान बना कर रहे। इस बहुमुखी अनुभव के कारण उनकी कृतियाँ 'अज्ञेय-युग' की बुनियाद बनीं। उनकी प्रसिद्ध काव्य रचनाएँ ये हैं—भग्नदूत, चिंता, इत्यलम, हरी घास पर क्षण भर, इन्द्र धनु रौंदे हुये थे, आँगन के द्वार पर और कितनी नावों में कितनी बार आदि।

अज्ञेय की कविताएँ विभिन्न विचारों को लेकर हुई हैं। कभी ईश्वर की अनुपम शक्ति, कभी प्रेम का अपूर्व आश्रय कभी प्रकृति का आत्मस्पर्शी

सौंदर्य, कभी आत्म समर्पण का महत्व और कभी समष्टि में व्यष्टि का अवसान आदि विभिन्न विचार उनकी कविताओं की व्याप्ति में आ चुके हैं।

श्री अज्ञेय के 'कितनी नावों में कितनी बार' काव्य संग्रह में एक विशिष्ट पहलू पर प्रकाश डाला गया है। जीवन की पिछली यात्रा की उपलब्धियों का सिंहावलोकन करते हुए भविष्य यात्रा की रूप-रेषाएँ खींची गयी हैं। जीवन एक गतिशील यात्रा है। उसका पथ एक अनोखा सत्य है। सत्य की खोज अनंत समय तक जारी रहती है। व्यक्ति और समाज का एक अटूट संबंध रहता है। जितना व्यक्ति समाज को देता है उतना वह पाता है। इस विचार मंथन से राष्ट्रीय गौरव का माखन तो निकलता ही है। अज्ञेय जी के शब्दों में—

'पर मैं जानता हूँ कि भोर होगा
और उसमें हम सब
संकल्प में बंधे, सामर्थ्य से भरे और एक
गौरव से घिरे हुए हम सब'

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

पं० बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' का जन्म सन् 1897 में ग्वालियर के पास हुआ। राष्ट्रीय आंदोलन में भाग लेकर उन्होंने अनेक बार जेल यात्रा की। उनकी बहुत-सी रचनाएँ कारागृह में लिखी गयीं। उनके काव्य ग्रंथ हैं—कुंकुम, अपलक, रश्मि-रेखा, ऊर्मिला आदि।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' हिन्दी के प्रमुख राष्ट्रवादी कवियों में गिने जाते हैं। उनका संस्कार, उनका कार्य, उनका जीवन सब मिलकर उनकी कविताओं में एक नया रंग ले आये। अपने देश के अतीत गौरव पर उन्हें बड़ा गर्व है पर वे व्यग्र हैं कि ऐसा देश पराधीनता में जकड़ा हुआ था। घोर निराशा और उज्वल भविष्य की कल्पना के बीच कवि का मन कह उठा—'हम अनिकेतन।' नवीन जी की विचारधारा अध्यात्मवाद से ओत-

प्रोत है। इसलिए वे बिंदु में 'सिंधु' देखते हैं' और 'नीम' की तरह सारे विश्व की गतिविधियों को पहचानते हैं।

केदारनाथ अग्रवाल

केदारजी एक ऐसे प्रगतिशील कवि हैं, जिन्होंने जीवन और ग्राम्य प्रकृति के अत्यधिक मनोहारी चित्र अपनी कविताओं में उकेरे हैं। सीधी बात सरल भाषा में कहना आप को रुचता है। 'युग की गंगा' व 'लोक और आलोक' उनके महत्वपूर्ण कविता-संकलन हैं। 'बसन्ती हवा' प्रकृति की उन्मुक्त, स्वच्छतावादी अभिव्यक्ति है।

के.एस. वेंकटरामय्या 'वेंकटेश'

सन् 1918 में हॉसन जिले में जन्म हुआ। मैट्रिक तक वहीं पढ़ाई हुई। फिर मैसूर में आगे की पढ़ाई हुई। पढ़ाई के साथ हिन्दी प्रचार, अध्यापन भी चलता रहा। 45 साल से हिन्दी प्रचार के कार्य में सतत प्रयत्नशील रहे। हिन्दी प्रचार सभा के व्यवस्थापक के रूप में कार्य संभालते रहे। कॉलेज में प्रवक्ता बने, प्रचार सभा में हिन्दी प्रचार का कार्य भी चलता रहा और साहित्यिक सेवा भी चलती रही। इस प्रकार उनका व्यक्तित्व ही बहुमुखी सतत कर्मठ, निरंतर जिज्ञासु ऋषि के जीवन से पूर्ण रहा।

अध्ययन और अध्यापन का कार्य विद्यार्थी-जीवन से ही शुरू हुआ। परिणामस्वरूप, कवि एक तरफ़ विद्यार्थी की जिज्ञासा लेकर आगे बढ़ा और अपने ज्ञान-भण्डार को भरता गया। दूसरी तरफ़ अध्यापन के क्षेत्र में अपने ज्ञान-भण्डार उपयोग करना भी हो गया। इस प्रकार कवि एवं साहित्यकार के जीवन की अन्वेषणा वहीं से शुरू हुई।

कवि की प्रसिद्धि 'दक्षिण गंगा' से हुई। अन्य बहुचर्चित कविताओं में 'जीवन अंबर', 'उषा सुंदरी', 'काल विहंग' प्रसिद्ध है। कहानियों में 'मुक्ति मार्ग, 'अभागिन' आदि समाजिक कहानियाँ मर्मस्पर्शी बन पड़ी हैं।

कहानी लिखने की सफलता से प्रेरित, प्रभावित एवं उत्साहित होकर एकांकी के क्षेत्र में प्रवेश करने का प्रयत्न किया। लेकिन वे रेडियो प्ले के रूप में अधिक लोकप्रिय हुए और आल इंडिया रेडियो में प्रसारित हुए। कवि एवं कहानीकार वेंकटरामय्या जी के साहित्य में एक समरसता है, एक संतुलन है, यथार्थ एवं आध्यात्म का समन्वय है। ऐसा लगता है कि उपनिषद् यथार्थ पुराणों की आध्यात्मिकता एवं आधुनिक संघर्षमय जीवन का धरातल उनके साहित्य में ताने-बाने के रूप में घुल-मिल गया है।

डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति

सरगु रंगप्पा कृष्णमूर्ति जी का जन्म बल्लारी में हुआ। आपने कर्नाटक विश्वविद्यालय, धारवाड़ से बी.ए. और हिन्दी एम.ए. परीक्षाओं को प्रथम श्रेणी में विशेष योग्यता मे पास किया। वहीं प्रो० राधाकृष्ण मुदलियार जी के तत्वावधान में "हिन्दी और तेलुगु की आधुनिक कविता में मानवतावाद" विषय पर अनुसंधान करके पी-एच.डी. उपाधि प्राप्त की। उस के पश्चात् कुछ वर्षों तक बल्लारी और बेंगलूर के खासगी कालेजों में प्राध्यापक की हैसियत से काम करने के बाद सरकारी कालेज में सेवाकार्य अपनाया। वहाँ से भी निवृत्त होकर अब बेंगलूर विश्वविद्यालय, ज्ञानभारती में, हिन्दी विभाग के प्रोफेसर तथा विभागाध्यक्ष हैं।

सरगु बहु भाषा भाषी हैं। हिन्दी, अंग्रेजी, तेलुगु और कन्नड़ के अतिरिक्त संस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश भाषा पर काफी अधिकार रखते हैं। स्वभाव से चिंतनशील और बाहर से सदा हँसमुख हैं।

सरगु ने हिन्दी और तेलुगु दोनों भाषाओं में अपनी लेखनी चलायी है। उनकी प्रकाशित रचनाओं में उल्लेखनीय नाम हैं—'मधुस्वप्न' और 'ज्वाला केतन' आदि काव्य। 'अक्ल बड़ी या भैंस' नाम से एक बाल-कथा संग्रह। इनके अतिरिक्त तेलुगु भाषा में 'श्री वेंकटेश शतकमु' और 'श्री गांधीशतकमु' नाम से दो काव्य ग्रंथ प्रकाशित किये हैं। 'गोलकोंडा',

'धर्मविजयम्' और 'रामगढ़म्' (अनूदित) आपके तेलुगु में लिखे उपन्यास हैं। तेलुगु उपन्यासों के लिए आपके सह लेखक रहे हैं डा० टी.बी.यम. अय्यवारु। इन रचनाओं में 'ज्वाला-केतन' को मैसूर सरकार का पुरस्कार तथा 'अक्ल बड़ी या भैंस' को ज्ञानभारती, लखनऊ से पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

आपकी कविताओं में मानवता की दुहाई है और दुर्द्धर्ष जीवन का दहकता चित्र है, नवनिर्माण के लिए चुनौती है, भावों में बाढ़ है और भाषा में गति है।

प्राचीन कवि

कबीरदास

भक्ति-साहित्य हिन्दी साहित्य के स्वर्णयुग के नाम से जाना जाता है। भक्ति-साहित्य की दो धाराएँ हैं—निर्गुण भक्ति-धारा और सगुण-भक्ति धारा। कबीरदासजी निर्गुण भक्ति धारा के प्रवर्तक माने जाते हैं। निर्गुण काव्य अथवा संत साहित्य की परंपरा का मुख्य उद्देश्य था—एकेश्वरवाद की स्थापना, छुआछूत, भेद की समाप्ति और सभी धर्मों के अच्छे विचारों को मिलाकर चलाना आदि। काव्य की सरलता, उपमाओं की विपुलता और रहस्यवाद की झलक निर्गुण संतों की रचनाओं में निहित है। निर्गुण संतों में कबीर, दादू और रैदास बड़े प्रसिद्ध हैं। दोहों और पदों पर आधारित इनका काव्य विशेष रूप में पुस्तक शैली में प्रस्तुत हुआ है। लोक भाषा में, स्थानीय बोलियों में रचनाएँ हुई हैं।

कबीरदास रामानंद जी के शिष्य थे। उनसे 'प्रेम पुष्ट वेदांत को सीखा। शेख तकी से सूफ़ी मत की अपूर्व प्रेम-भावना सीखी। वैष्णव संप्रदाय की अहिंसा, अद्वैत सिद्धांत की माया और नाथ पंथियों का हठयोग अपनाकर, सभी अच्छे विचारों का अपनी अनगिनत रचनाओं में शामिल

किया। इस कारण उनका काव्य मानव मात्र के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ और सर्वकालीन धर्म का रूप धारण किया।

कबीर की रचनाओं में परब्रह्म का स्वरूप, धर्म का सच्चा स्वरूप, राम की महिमा; गुरु की महत्ता और संसार की नश्वरता आदि सरल से सरल उदाहरणों द्वारा, सुंदर से सुंदर उपमाओं द्वारा समझाए गये हैं। उनकी साखियों में मानव-धर्म का प्रचार और समाज सुधार एक साथ हुए हैं।

सूरदास

हिन्दी साहित्य के सगुण संप्रदाय की दो प्रमुख धाराएँ हैं—राम भक्ति और कृष्ण भक्ति। सूरदास जी श्री कृष्ण भक्ति धारा के अग्रणी माने जाते हैं। कृष्ण-भक्ति के काव्य में, श्री कृष्ण को छोटा बालक बनाकर, सखा बनाकर, प्रेमी बनाकर और स्वामी बनाकर आराधना की गयी है।

सूरदासजी जनम से धेअं कहे गये हैं। वे पुष्टिमार्ग के भक्त और कवि थे। उन्होंने मुख्य रूप से कृष्ण की बाल और किशोर जीवन की लीलाओं का वर्णन किया है। वात्सल्य, सख्य, माधुर्य एवं समर्पण का भाव उनके काव्य में लक्षित होता है। ब्रजभाषा का प्रयोग, मुक्तक शैली का प्राधान्य उनके काव्य के अन्यतम विशेषताएँ हैं। सभी पद गेय हैं और उपमादि अलंकारों से निखर उठे हैं।

सूरदास की रचनाओं का संग्रह 'सूरसागर', 'साहित्य लहरी' और 'सूर सारावली' में हुआ है।

तुलसीदास

श्री गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी साहित्य की सगुण-धारा की रामभक्ति-शाखा के प्रवर्तक और प्रसिद्ध कवि माने जाते हैं। वे विश्व के महान भक्त और कवियों में गिने जाते हैं।

तुलसीदास जी श्रीराम के अनन्य भक्त थे। उनकी रचनाएँ ज्यादातर अवधी भाषा में हैं। वे साहित्य जगत के लोकनायक माने गये हैं। उन्होंने रामभक्ति साहित्य को इतना काव्य दिया कि शायद ही किसी अन्य कवि ने किसी भी साहित्य को इतना कुछ दिया हो।

तुलसीदास ने विष्णु के राम रूप की भक्ति का प्रतिपादन किया है। उनके काव्य में श्रीराम एक प्रेमी या राजा नहीं पर मर्यादा पुरुषोत्तम के रूप में चित्रित हैं जिससे यह स्पष्ट हुआ कि राजनीति की जटिल परिस्थितियों में भी धर्म की भावना किस प्रकार अपना उत्थान कर सकता है।

तुलसीदास की प्रधान रचनाएँ हैं—रामचरित मानस, विनय पत्रिका, बरबै रामायण आदि। उनके 'रामचरित मानस' में रामायण की कथा लोक भाषा में इस प्रकार वर्णित है कि लोक और शास्त्र, भक्ति और ज्ञान, भोग तथा वैराग्य का समन्वय हुआ है। 'रामचरित मानस' की खूबी यह है कि उसमें धर्म, नीति और दर्शन का समुचित समन्वय हुआ है।

'पुष्प वाटिका प्रसंग' में श्रीराम और सीता मर्यादाच्छादित प्रेम का सूक्ष्म वर्णन हुआ है।

बिहारीलाल

हिन्दी साहित्य के रीतिकालीन कवियों में बिहारीलाल जी का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वे राजा जयसिंह के दरबारी कवि थे। उनके दोहे 'बिहारी सतसई' में संकलित हैं। वे दोहे अपने समय के अत्यंत लोकप्रिय बने। उनमें विशेष रूप से श्रृंगार और भक्ति तथा नीति का प्रकाशन हुआ है।

रीतिकालीन साहित्यिक प्रवृत्तियाँ प्रधानतया चार हैं—लौकिक श्रृंगार की व्यंजना, अलंकरण का आधिक्य, राधा-कृष्ण का प्रेम वर्णन तथा नख-शिख वर्णन। बिहारी के दोहे इन संपूर्ण प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व

करते हैं। बिहारी ने मानों गागर में सागर भर दिया है। उनके दोहों के अलंकारों भरी अद्भुत योजना, चमत्कार की छटा और अनुभूति की गहराई को देखकर ही लोगों को कहना पडा—

'सतसैया के दोहरे ज्यों नविक के तीर
देखन में छोटै लगै घाव करे गंभीर।'

आश्चर्य नहीं कि बिहारीलाल का एक-एक दोहा हिन्दी साहित्य का एक-एक रत्न माना गया है।

कठिन-शब्दार्थ (अर्थ प्रकाशिका सहित)

आधुनिक कवि

जयशंकर प्रसाद

किंजल्क—कमल, अज्ञात—अजान, सुनहली—सोने की, हिलोर—लहरें, सूत्र—धागा, सुदिन मणि—सूरज, सुमन—फूल।

मैथिलीशरण गुप्त

तंतु—तार, सिर धुनना—सोच में पड़ जाना, वन्हि—आग, क्षोभ—गुस्सा।

सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

बलि—न्योछावर, श्रम संचित—परिश्रम से प्राप्त, महाकाल—मृत्यु शर—बाण, उर—दिल, जल धौत—पानी से धोया हुआ, दृग—आँखें, अपलक—एक टक, क्लेद—द्रवित।

महादेवी वर्मा

तारक—नक्षत्र, नीरव—मौन, उर—हृदय, परछाई—प्रतिबिंब, हाला—मधु, नंदन—सुख, निष्क्रिया—बिना किसी क्रिय, निर्वासन—दूर हो जाना, भ्रम—झूठा।

सुमित्रानंदन पंत

कटि—कमर, उर्वर—फलवती, ध्रुव—अटल लक्ष्य, गाथा—कथा, अधिष्ठाता—स्थापित करनेवाला, तूर्य—एक तरह का बाजा, तिरंग—तीन रंगवाला।

रामधारीसिंह 'दिनकर'

अनल—आग, काल कूट—भयंकर विष, सुधा—अमृत, झंडा—पताका, खंजर—हथियार, होड—स्पर्धा, तृषा—प्यासा, दिलेर—वीर, किश्ती—नाँव, जन्नत—स्वर्ग, शोणित—रक्त, पसीना—स्वेद।

माखनलाल चतुर्वेदी

वीरान—एकांत, रैन—रात, पिन्हाता—पहनाता, कजली गाने—बरसात के मौसम में गाये जाने वाले गीत, बिंध—जुडकर।

सच्चिदानंद हीरानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय'

कुहासे—हवा में छिबे हुए पानी के कण, पराये—दूसरों के, तीखा—तीक्ष्ण।

बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

गह—पकड़ना, बौरी—पागल, बार; अलख—अनदेखा, सुघडा—सुंदर काया, विभीषिका—भयंकर रूप, निरख—देखना, विप्लव—क्रांति।

के.एस. वेंकटरामय्या वेंकटेश'

अंबर—आकाश, कपड़ा; ताना—कपड़े की बुनावट में वह सूत जो लंबाई के बल पर होता है, बाना—कपड़े की बुनावट में वह ताणा जो आड़े बल ताने में भरा जाता है, पल—क्षण, हरता—दूर करता, भरते—पूर्ण करते, नरवर—श्रेष्ठ मानव, नैया—नाव, भानु—सूर्य, दिवा—आकाश, सोम—चन्द्र, निशा—रात, निशि—रात, साखी—साक्षी, भाखी—कहा, भूषण—सुन्दर, गागर—घड़ा, रीता—खाली।

डॉ० सरगु कृष्णमूर्ति

साँपों की बांभी—साँप का बिल, वल्मीक; तूफाँ—तुफान, टुक—ज़रा भी।

प्राचीन कवि

कबीरदास

उनमान—अनुमान, कँवल—कमल, लुबधिया—मोहित होकर, दुहूँ—दोनों नाडियाँ (इडा और पिंगला), पुरिबला—पूर्व जन्म का पुण्य, पाणी—पानी, सुरति—राग पूर्ण, निरति—विराग, स्यंभ—स्वयंभू, मुक्ताहल—मुक्ता-फल, औंध—उलटा, पनिहारि—पानी खींचनेवाला, हंसा—ज्ञानी, समद—समुद्र, कूता—कुत्ता, जैबडी—रस्सी की गांठ, टापा—व्यर्थ करने, बिडाणी—पराई, मैंमता—मदमस्त, सिषर—शिखर, सैल—पर्वत, पपील—चींटी, सूते—सोते, उघाडिया—खोलना, बीसरि—भूलकर।

1) परब्रह्म के प्रकाश का अनुमान लगाया नहीं जा सकता। क्योंकि अनुमान और उपमाएँ केवल लौकिक क्षेत्र तक सीमित हैं। वह

आँखों से न देखा जाता है, न वाणी का विषय बनता। वह केवल अनुभूति का विषय ही है।

2) दिल में आनंद रूपी सहस्रदल कमल खिला है जिसमें भगवान का निवास होता है। उस कमल की सुगंध पर मन रूपी भ्रमर मँडरा रहा है। इस रहस्य को भक्त जन ही समझ सकते हैं।

3) हठ योगी का परम लक्ष्य है सुषम्ना में पिंगला और इडा नाडी को एक साथ स्थापित करना। पूर्व जन्म के पुण्य से ही ऐसी सफलता मिल सकती है।

4) पानी बर्फ बनता है और फिर बर्फ पानी—दोनों अवस्थाएँ विशुद्ध चैतन्य का ही खेल है जो बद्ध और मुक्त के बीच हुआ करता है।

5) साधक के चित्त के दो मुख हैं—पहली सुरति है अर्थात राग भावों से व्यंजित प्रवृत्तियाँ और दूसरी निरति है जो विराग या निरावलंब की अवस्था में होता है। जो इनमें न फँसकर दूर ही से अनुभव करता है उसके लिए मानो भगवान का द्वार खुला है।

6) जब 'मैं' अर्थात अहंकार का बोध था तब भगवान नहीं मिला। जब हरि मिला तो अहंकार मिट गया। भगवान रूपी दीप-दर्शन से अज्ञान रूपी अंधकार नष्ट हुआ।

7) भगवान को पाकर मन रूपी हंस इतना आनंद हुआ कि सुख रूपी मानसरोवर में मोती रूपी मुक्ता-फल चुग रहा है। वह अब कहीं नहीं जाएगा।

8) ऊपर उल्टे मुखवाला कुँआ है जिसमें आनंद रूपी पानी भरा रहता है। पानी खींचनेवाला नीचे खडे रहता है। केवल ज्ञानी (हंस) ही उस पानी को खींचकर पी सकते हैं। इस साखी में योग साधना की सफलता की ओर इशारा किया गया है।

9) प्रेम और भक्ति की रीति एक ही है। मिलन के बाद कोई पृथक्कता नहीं रह जाती।

10) प्रेम की चरम-सीमा का वर्णन हुआ है। भगवान अथवा प्रेमी को चाहनेवाले की आँखों में इस तरह छिपाया रखा जाता है जिससे किसी और को उसके दर्शन न हो और चाहनेवाले की नजरें किसी अन्य पर पड न जाएँ।

11) कबीर कहते हैं कि मैं राम का कुत्ता मुनिया हूँ, गले में राम की रस्सी पडी है, जिस ओर वह खींची जाती है उसी ओर मैं चल पड़ता हूँ।

12) इस दुनिया में ऐसे अनेक हैं जो राम का ज्ञान नहीं रखते, वे अपने जीवन को केवल व्यर्थ करने गुम-राह होकर आये हैं।

13) इस दुनिया में कोई किसी का नहीं है। क्या माँ, क्या बाप सभी संयोग वश एक दूसरे से इस तरह मिले हैं जिस तरह नदी की धार में चलती नावें एक दूसरे से मिला करती हैं।

14) अहंकार का दमन करके, वासनाओं से दूर रहने पर ही जीवात्मा को त्रिकुटी पर परमात्मा के दर्शन हो सकेंगे।

15) काया योग के बिंबों में परमतत्व की प्राप्ति का वर्णन है। कबीर तो शून्य शिखर पहुँच चुके हैं जब कि सूक्ष्म से सूक्ष्म साधक भी बड़े कष्ट से पहुँचते हैं। अन्य साधकों का जिनका मन विषय वासना की बोझ से लडखडाते हैं, कहना ही क्या ?

16) माया, मोह रूपी अर्थात अज्ञान रूपी काली कंबल डालकर जीव को आखिरी दम तक धोखा देती है और जीव विकल होकर आत्मज्ञान की तलाश में छटपटाता रहता है।

17) जिस प्रकार बाड (fencing) पर मैल के चढ़ जाने से तंतुएँ कर जाती हैं पर मैल बाड को नहीं छोडती उसी प्रकार आदमी की विषयासक्ति उसे नहीं छोड़ती।

18) गुरु की अपार महिमा के कारण कबीर के अनंत अंतर्चक्षु खुल गये हैं। उनका उपकार अनंत है जिसके कारण कबीर को हमेशा भगवान के दर्शन होते हैं।

19) राम की कृपा से गुरु मिले जिनके उपदेश से ज्ञान का प्रकाश हुआ है। इसे भूलकर कभी संसार में फँस न जाना।

20) गागर के टूट जाने पर अर्थात अज्ञान का परदा हट जाने पर बाहर और भीतर अर्थात आत्मा और परमात्मा का एक दूसरे में विलयन हो जाता है। यही ज्ञानियों का कथन है।

सूरदास

हरि-विमुखन—भगवान को न चाहनेवाले, पय—दूध, भुजंग—सर्प, श्वान—कुत्ता, कामरि—कंबल, नीर—जल, सिरि—सिर पर, अघ—पाप, मीन—मछली, सिवार—उलझनेवाली घास, सुत-प्रिय—स्त्री-बच्चे, बेहाल—बुरा हाल, बिहबल—विह्वल, कूल—किनारा, नैकु—नेक, तऊ—तभी, तारे—उद्धार किया, मुख—मुँह में, अपनै रंग—अपने ही धुन में, बट—वट वृक्ष, बिडरि—बादल, सकेलत—सँभालते, सकट—शकट, छाँह—परछाई, अंचरा—आंचल, रिसैया—गुस्सा, बलकि—आवेश, नैकु—ठीक तरह से, झगरत—लडाता, पठाई—भेजा, धाई—दौडकर।

तुलसीदास

कंकण—हाथों के कड़े, नूपुर—पायजेब, अस—ऐसा, चिताए—

देखा, निमि—पलक, जनक राजा के पूर्वज; छबि गृह—सुंदरता रूपी घर, दीप सिखा—दीपक की शिखा, जुठारी—प्रयोग हो चुका, दसा—दशा, अनुहारी—अनुकूल, फुलवाई—बगीचा, छोभा—क्षोभ, सुभद—मंगलदायक, हेरी—देखी, बतकही—बातें करना, सावक—बच्चा, सित—सफेद, उर—हृदय, कपाट—किवाड, बिधु—चन्द्र, बिलगाई—हटाकर, श्रमबिंदु—स्वेद कण, धूधरवारे—घुंघुराले बाल, रतनारे—लाल रंग के, कलभ कर—हाथी की सूँड, बलसींवा—बल की सीमा, लोना—सुंदर, आलि—सखी, पानी—हाथ, पनु—शपथ, परबस—परवश, लाचारी; बेरियाँ—समय, गिरा—वाणी, मिस—बहाने, निरखि—देखकर, थोरि—कम, बिसूरति—मन में आतंकित, मसि—स्याही, जोरी—जोड़कर, अवसाना—अंत, सुतीय—सुमंगली, पवित्रता; रेखा—गणना, सारदा—शारदा, नीके—अच्छी तरह, खसी—खिसकाना, बरु—वर, राचा—मन चाहा।

सीता जी जब बाग में चलने लगीं तो हाथों के कड़े, करधनी और पायजेब के मधुर शब्द निकले जिसे सुनकर श्री राम ने मुड़कर देखा और उनके नयन स्थिर हुए मानो निमि (पलक, जनक के पूर्वज) सकुचाकर अपने स्थान छोड़कर रह गये। सीता की शोभा की प्रशंसा मौन रूप से ही हुई। सीता ऐसी मालूम हुई मानो सुंदरता रूपी घर में दीपक की लौ जल रही हो। अपने मन में ही सीता की शोभा का वर्णन करते हुए श्री राम लक्ष्मण से बोले कि यह जनक जी की वही कन्या है जिसके लिए धनुष यज्ञ हो रहा है। सखियाँ इसे गौरी-पूजन के लिए ले आयी हैं। सीता की अलौकिक सुंदरता देखकर श्री राम का मन क्षुब्ध हो गया है, उनके दाहिने अंग शुभ-शकुनार्थ फड़क रहे हैं। उनकी मानसिक दशा कभी कलुषित नहीं रही। रघुवंश के राजा कभी शत्रु से नहीं हारे, न परायी औरतों के जाल में फँस, न दान करने से मुँह मोडा। इस तरह बातें करते-करते श्री राम सीता की सुंदरता को भौंरे की तरह पीने लगे।

सीता जी की आँखें श्री राम को ढूंढ़ रही थीं। सखियों ने लता की ओट में श्री राम और लक्ष्मण को दिखाया। श्री राम को देखकर सीता जी की आँखें निश्चल हुईं मानो शरद ऋतु चन्द्रमा को चकोरी देख रही हो। श्री राम को अपनी आँखों द्वारा अंदर खींच कर प्रेम मग्न हो गयीं।

श्री राम और लक्ष्मण लता मंडप में से प्रकट हुए मानो दो निर्मल चन्द्रमा बादलों के पर्दे को हटाकर निकले हों। वे देखने में बड़े सुंदर थे। उनके अंग काम देव को लजाते थे। सीता तथा उनकी सखियाँ उन दोनों की सुंदरता देखकर अपने आपको भूल गयीं। सीता की एक सखी ने छेडा कि पहले उन राजकुमारों को देखा जाय फिर गौरी की पूजा होगी। सीता ने एक बार श्री राम को देखा और फिर अपने को माँ-बाप का अधीन समझकर लौट चलीं।

इधर-उधर देखने के बहाने सीता बार-बार घूमकर श्री राम को प्रेमवश देखती रहीं। एक ओर धनुष का कठोरपन और दूसरी ओर श्री राम का कोमल तनु की तुलना से सीता का मन निराशा की आशंका से व्यग्र रहा। भवानी के मंदिर में जाकर प्रार्थना करने लगीं कि मेरे मनोरथ को पूर्ण करो। उधर गौरी के गले की एक माला सीता पर गिर पडी और बोल उठी —'हमारी सच्ची आसीस सुनो, जिसमें तुम्हारा मन लगा है वही वर तुम्हें मिलेगा।

बिहारीलाल

भव बाधा—जन्म-मरण का दुख, जा तन की—जिसके शरीर की, झाँई—छाया, स्याम—कृष्ण, हरित दुति—आनंदित, करि—हाथी, तरहरी—तलहटी, धरि—समझकर, चित लाय—मन लगाओ, अनुरागी—प्रेमी, गति—दशा, श्याम रंग—काला रंग, श्री कृष्ण प्रेम; उज्वल—निर्मल, प्रेममय; काँच—आईना, निरधार—निश्चित रूप से, लखिए—देखिए, तजि—छोड़, निकुंज—निश्चित कुंज, प्रयाग—

Vijaya Evening College Library
Bangalore-560 004

त्रिवेणी तीर्थ, हमाम—स्नान-घर, मकु—शायद, पसीजे—पसीने से तर, त्रय-ताप—आदि भौतिक, आदि दैविक, अध्यात्मिक अथवा मदन ताप, उद्दीपन ताप, विरह ताप; गुन—गुण, डोरी; चंग—पतंग, रंग—सम।

1) वे ही राधा नागरी मेरे जन्म-मरण के दुख को दूर करें जिनके शरीर की छाया पड़ते ही श्री कृष्ण भी आनंदित हो जाते हैं।

2) यमराज रूपी हाथी के मुख के नीचे अपने को पड़ा हुआ समझकर भगवान में मन लगाओ और विषय की इच्छा छोड़कर अब भी श्री नरसिंह के गुण गाओ।

3) ज्यों-ज्यों मन श्री कृष्ण के प्रेम (भक्ति) में लीन होता है त्यों-त्यों प्रेममय (निर्मल) होता है।

4) मैंने निश्चय रूप से समझ लिया कि यह क्षण-भर का संसार आईने के समान है। इस में भगवान का एक ही रूप अनेक रूपों में प्रतिबिंबित होता है।

5) तीर्थाटन को छोड़कर श्री कृष्ण और राधा के अपूर्व प्रेम का ध्यान करना उत्तम है। राधा-कृष्ण के पवित्र प्रेम से ब्रज मंडल की प्रत्येक जगह त्रिवेणी-संगम के बराबर पवित्र है।

6) बड़ी देर तक इंतजार करके श्री कृष्ण को पसीने से तर होकर लौटते देखकर कहा जाता है कि मेरा हृदय रूपी स्नान-घर त्रिताप से तपा कर रखा गया है जिससे आप कभी भी आकर नहाकर अपने को श्रमहीन बनावें।

7) जिस प्रकार डोरी के बढ़ाने से पतंग दूर जाती है और समेटने से पास आती है उसी प्रकार अपने गुण की बड़ाई से (गर्वित होने पर)

भगवान दूर चला जाता है और अपने को अकिंचन समझने पर भगवान पास आता है।

8) मुझे भी मोक्ष दीजिए जैसे बहुत-से अधमों को दिया। अगर बांधने ही में प्रसन्नता हो तो अपने गुणों से बांध दीजिए।

9) श्री कृष्ण की मोहिनी मूर्ति की अत्यंत अनोखी रीति है। सुन्दर चित्त के भीतर तो रहती है, परन्तु उसकी कांति संसार भर में प्रतिबिंबित होती है।

10) मैं अपनी कुटिलता न छोड़ूंगा चाहे संसार मेरी निन्दा करे। तुम त्रिभंगी लाल हो और सीधे हृदय में बसने में शायद तुम्हें तकलीफ होगी।

VIJAYA EVENING COLLEGE.
BANGALORE-4.
LIBRARY
ACCN. NO. 9239
SECTION Hindi
COST RS. 8:85
DATE 29:7:91 LIBRARIAN.

Vijaya Evening College Library
BANGALORE

This book should be returned on or before the date last stamped. An overdue charge of 10 paise will be levied for each day, if the book is kept beyond that date.

ANIL PUSTAK KENDRA
51, AVENUE ROAD, BANGALORE-2